Vol. 2, No.1 (January 2013) P. 1-3
Sangeet Galaxy
ISSN : 2319-9695

राग संगीत और लोक संगीत में सम्बन्ध

डॉः बीजू कुमार भागवती
E mail: biju.bhagawati@yahoo.com

साधारणतः संगीत का अर्थ मनुष्य के अनुभूतिपूर्ण मन की सूक्ष्म अभिव्यक्ति है, जो गीत, वाद्य तथा नृत्य के माध्यम से प्रकट होती है। भगवान ने मनुष्य की सृष्टि की और मनुष्य द्वारा 'आर्ट' अर्थात कला का जन्म हुआ। कला के द्वारा सभ्यता की उन्नति मापी जाती है और किसी देश की संस्कृति के बारे में जानकारी मिलती है। संगीत ऐसी ही एक कला है। भारतीय संगीत भारत की सभ्यता एवं संस्कृति की अतुलनीय धरोहर है।

भारतीय संगीत में 'राग' शब्द बहुत ही महत्वपूर्ण है। संगीत में चाहे जितने भी उपादान हो, राग ही उसका प्राण और वास्तविक रूप है। राग शब्द की उत्पत्ति संगीत समाज में बहुत प्राचीन नहीं है। ईसा द्वितीय शताब्दी के नारदीय शिक्षा और भरत के नाट्यशास्त्र के पूर्व के ग्रंथों में 'राग' शब्द का उल्लेख नही मिलता है। पंडितों के मतानुसार, नारदीय शिक्षा एवं भरत मुनि के नाट्यशास्त्र के समय में भी राग का कोई अस्तित्व नही था। हालांकि यह कथन सर्वजन स्वीकार्य नही है, क्योंकि नारदीय शिक्षा में कैशिक–मध्यम, षड़जग्राम आदि ग्रामरागों का उल्लेख मिलता है और नाट्यशास्त्र में भी अठारह जाति रागों का परिचय मिलता है। यह बात अवश्य है कि वर्तमान हिंदुस्तानी एवं कर्नाटक संगीत पद्वति में जिस प्रकार के राग रूप का वर्णन व परिचय मिलता है, वैसा वर्णन व परिचय मतंग के पूर्व युग में (लगभग ईसा नवीं शताब्दी) नही मिलता था। इसी कारण मतंग मुनि ने अपने ग्रंथ 'बृहद्देशी' में ''यन्नौकतं भरतादिभिः'' का उल्लेख किया हैं। एकमात्र मतंग ने ही पहली बार अपने ग्रंथ 'बृहद्देशी' में 'राग' शब्द का परिचय दिया।

मतंग मुनि के अनुसार, जिस स्वर –समुदाय से प्राणियों का मनोरंजन होता है तथा जिनसे उनके मन में आनंद का संचार होता है उसे ही 'राग' कहते है। प्रत्येक प्राणी के ह्रदय में अनुराग उत्पन्न करना ही 'राग' की साथर्कता है। राग के उत्पत्ति के संदर्भ में संगीत शास्त्रों में अनेक पौराणिक कथाओं की अवतारणा की गई है । अतः यह स्वतःसिद्ध है कि सात स्वरों के आरोहण–अवरोहण एवं उनके संयोग–वियोग प्रणाली से ही रागों की सृष्टि हुई।

प्राचीन शास्त्रकारों ने संगीत में मार्ग तथा देशी – दो भेद माने हैं। वैदिक युग में संगीत के जितने नियम प्रचलित थे वह मार्ग संगीत के अंतर्गत थे। प्राचीन शास्त्रकारों का कथन है कि ब्रह्माजी द्वारा नियमबद्ध किया हुआ संगीत ही मार्ग संगीत है। इसका दूसरा नाम गांधर्व संगीत है। मार्ग संगीत गंधर्वों के द्वारा गाया–बजाया जाता था, ऐसा ग्रंथों में बताया गया है। मार्ग संगीत के बाद देशी संगीत आता है। देशी संगीत के बारे में प्राचीन ग्रंथकारों का यह कहना है कि देश के विभिन्न प्रांतों में बड़े–छोटे सभी वर्ग के लोग जिस संगीत को प्रेमपूर्वक नियमों के किसी कठिन आधार की तरफ ध्यान दिए बिना गाते है वही देशी संगीत कहलाता हैं। हिन्दुस्तानी संगीत के प्रसिद्ध ग्रंथ 'श्रीमल्लक्ष्य–संगीतम्' के रचयिता श्री विष्णुनारायण भातखंडेजी ने लिखा है–

गीतम् वाद्यम् तथा नृत्यम् त्रयम् संगीतमुच्यते ।
मार्गदेशी विभागेन संगीतम् द्विविधम् मतम् ।।
मार्गितम् प्रथमाचार्यैयेत्रितम् नियमोत्तमैः ।
अतिशुद्धरूपमपि सांप्रतम् नैव गोचरम् ।।
धुना लक्ष्यमार्गे यतू स्वरूपम् परिदृश्यते ।
तत्सर्वम् देशिसंज्ञम् स्यादित्याहुर्लक्ष्यवेदिनः ।।

भातखंडेजी के अनुसार, देशीसंगीत वही है जो वर्तमान काल में सर्वत्र प्रचलित है। लोकरूचि के अनुसार यह संगीत भिन्न भिन्न रूप ग्रहण कर सकता है। अतः यह कहा जा सकता है कि जो प्रचलित संगीत देश–देश में सुनाई पड़ता है वह देशी संगीत ही है, जो रूचि अनुसार आज भी एक रूप में प्रचलित है। प्राचीन और वर्तमान संगीत में जो अंतर है वह अंतर हम देशी संगीत से जान सकते है। देशी संगीत परिवर्तनशील है। युगों के परिवर्तन के साथ–साथ देशीसंगीत के भी भिन्न भिन्न रूप दिखाई पड़ते है। साथ ही, देशी संगीत से देश की सभ्यता, संस्कृति एवं वहॉ के रहनेवालें लोगों के मध्य प्रचलित रीति–रिवाजों के बारे में भी बहुत कुछ ज्ञात हो सकता है।

संगीत जब संस्कार एवं परिष्कार से सम्पन्न होता है और समाज का प्रतिष्ठित वर्ग उसको अंगीकार कर लेता है तो वह मार्ग कहलाता है। मार्ग संगीत, संगीत की वह शाखा है जो व्याकरणबद्ध हो जाती है। उसी की दूसरी धारा जनरूचि के आधार पर नए नए सौंदर्य–तत्वों को बटोरती रहती है। संगीत की इसी धारा को देशी संगीत कहते है। मतंग कृत 'बृहद्देशी' में देशी संगीत का उल्लेख पर्याप्त रूप से किया गया है, जो 'संगीत रत्नाकर' के महान रचयिता पंडित शारंगदेव तक चलता रहा। इसमें क्रमशः जातिगान, प्रबन्ध, ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा, भजन एवं गीतादि संगीत–पद्धतियों का समय–समय पर आगमन हुआ और शास्त्रीय नियमों से अपरिचित जनसाधारण के द्वारा अपनाया गया, वह संगीत लोक संगीत कहलाया। अतः हमारे लोक संगीत को हम देशीसंगीत कह सकते है।

लोक संगीत 'लोक' शब्द के अनुसार सामाजिक जीवन से सम्बन्धित है। भारतवर्ष एक विशाल देश है। उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक, पूर्व में असम प्रांत से लेकर पश्चिम में पंजाब प्रांत तक फैले हुए विशाल क्षेत्रफल वालें देश में कई धर्म, कई जातियाँ, कई विचारधारा वालें, कई प्रकार की प्राकृतिक परिस्थिति में विचरण करने वालें लोग निवास करते है। यह तो प्राकृतिक सत्य है कि प्रकृति का उस स्थान के दैनिक जीवन, साहित्य तथा कला में पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। कला का एक विशेष क्षेत्र होने के कारण संगीत में भी प्रकृति का पर्याप्त प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इस प्रकार यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि प्राकृतिक परिस्थिति विशेष द्वारा पोषित संगीत लोक संगीत है।

लोक संगीत की परम्परा बहुत पुरानी है। प्राचीन काल में जो जातिगायन प्रचलित था, उसका परिवर्तित रूप ही आज के राग संगीत है। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में भी अठारह जातियों के रागों के नाम हैं। जाति गायन के सृष्टि के संदर्भ में संगीत अनुसंधानकर्ताओं का कहना है कि प्राचीन काल में अर्थात् हमारे पूर्वजों के समय में जो संगीत आम लोगों में प्रचलित था, वह संगीत जातिगायन से बहुत कुछ सम्बन्धित था। उस संगीत में जो जो स्वर गाए जाते थे उनसे ही जातियों की सृष्टि की गई और

उसी को नियमबद्ध कर उच्च श्रेणी में लाया गया। इसी कारणवशः हमें लोकगीतों की किन्हीं किन्हीं धुनों के साथ किन्हीं किन्हीं रागों का सामंजस्य दिखाई पड़ता है। यहां हमारे मन में यह प्रश्न उदय होता है कि लोकसंगीत का रागसंगीत से सम्बन्ध कैसे हुआ तथा रागों की सृष्टि पहले हुई या लोकगीतों की ? इस प्रश्न के उत्तर में हम यह कह सकते हैं कि लोकगीतों की ही सृष्टि पहले हुई और लोकगीतों की ही धुनों से रागों की उत्पत्ति हुई। पहले मनुष्य के मन में लोकगीतों के धुनों का जन्म हुआ और बुद्धि के विकास के साथ–साथ उसने उन्हीं धुनों को नियमों का आधार प्रदान कर रागों को जन्म दिया।

प्राचीन काल से चली आ रही लोकगीतों के परम्परा को गायकों ने शिक्षा के सहारे सांचें में ढालकर राग संगीत के अंतर्गत किया। परन्तु गांवों में लोकगीतों की परम्परा अक्षुण्ण रही। युगों से लोक संगीत की लोक समाज में परम्परा से चली आ रही हैं। परन्तु प्राचीन और वर्तमान लोकगीतों में भारी अन्तर दृष्टिगोचर होता हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि लोक संगीत की परम्परा समाज में मौखिक रूप से चलती आ रही हैं। कोई लिखित रूप न होने के कारण युगों के बदलने के साथ साथ लोकगीतों की धुनों में भी बदलाव आता गया।

राग संगीत की तुलना यदि हम गंगा नदी के धीर–गंभीर एवं शांत प्रवाह से करे तो लोक संगीत की तुलना पर्वतीय प्रदेशों में उन्मुक्त रूप से बहते हुए और कल् कल् निनाद करते हुए झरने से कर सकते है। इन दोनों धाराओं का यदि सूक्ष्म अध्ययन किया जाए तो प्रतीत होगा की यह दोनों धाराएं सदा एक दूसरे को प्रभावित करती रहती है। विचार विनियम और भावों की परम्परा को देखते हुए हम दोनों में कोई अंतर नही पाते।

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि आधुनिक राग संगीत का जनक अतिप्राचीन लोक संगीत ही हैं। लोक संगीत जनमानस में निहित सुक्ष्म एवं सुन्दर भावनाओं का प्रतिविम्ब हैं। लोक संगीत ही आधुनिक राग संगीत वृक्ष का मूल है, जो न केवल उसे पोषण देता है बल्कि उसे निरन्तर विकसित एवं प्रफुल्लित बनाए रखता है जबकी राग संगीत नियमबद्ध, शास्त्रीयतापूर्ण एवं परिष्कृत रूप है और लोक संगीत मनुष्य के हृदय पटल में निरन्तर प्रवाहमान सरिता स्वरूप हैं।

सहायक ग्रंथ सूची :

1. Fundamentals of Indian Music – Dr. Swatantra Sharma
2. असमत मार्गी संगीत आरु मनसा गीत –बापचंद्र महंत
3. धार्मिक परम्परायें एवं हिन्दुस्तानी संगीत – डॉ. रेणु सचदेव
4. राग संगीत – बीरेंद्र कुमार फुकन

****